मनोविश्लेषणवाद

मनोविश्लेषण मानव-मन के विश्लेषण की पद्धति पर आधारित है। इसके जन्मद्राता सिग्मण्ड फ्रायड हैं। फ्रायड ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग चिकित्साशास्त्र में किया है। उन्होंने काव्य, कला, दर्शन, अर्थ, समाज-विज्ञान आदि के बारे में मनोविश्लेषण की मान्यताओं के आधार पर नवीन मान्यताएँ प्रस्तुत कीं।

फ्रायड ने सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठतम उपलब्धियों को मानव की काम-प्रवृत्ति की अभिव्यंजनाएँ माना है। उनके अनुसार मनुष्य-जीवन में कुछ भी मूल्यवान् और धार्मिक नहीं है। मनुष्य काम-प्रवृत्ति के हाथों की कठपुतली मात्र है।

फ्रायड उपचार गृह से दर्शन की ओर बढ़े हैं तथा रोगियों का उपचार करते-करते व्याधियों के मूल उद्‌गम तक पहुँचे हैं और अन्तर्मन के विज्ञान की खोज में सफल रहे हैं।

अचेतन-सम्बन्धी धारणा--फ्रायड के अनुसार मानव-मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है--

चेतन	(Conscious)
अचेतन	(Unconscious)
पूर्व-चेतन	(Pre-conscious)

इनमें चेतन की अपेक्षा अचेतन अधिक प्रबल है। चेतन सामाजिक जीवन में सक्रिय रहता है और अचेतन सामाजिक स्वीकृति के अभाव में मन के अन्तःस्थल में रहकर अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष करता है।

तीन स्तरों वाले इस मानस-तन्त्र को फ्रायड ने पुनः तीन भागों में विभाजित किया है। ये हैं--

इदम्	(Id)
अहम्	(Ego)
अति-अहम्	(Super Ego)

इनमें इदम् एक प्रकार की ऊर्जा है। यह रागों का पुंज है। यह अतृप्त वासनाओं का अन्धकारमय कोष है। अहम् चेतन मन है, जो सामाजिक मूल्यों के प्रति सचेष्ट रहता है। अति-अहम् संचित सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक है, जिसका काम आलोचना और अधीक्षण करना है।

फ्रायड के अनुसार 'काम' जीवन की मूल वृत्ति है, क्योंकि अचेतन जिन

दमित इच्छाओं का पुंज है, वे मूलत: काम के चारों ओर केन्द्रित हैं। काम को फ्रायड ने 'लिबिडो' कहा है। मानव के व्यक्तिगत और समष्टिगत, सभी कार्य-व्यापारों के मूल में काम-वृत्ति की ही प्रेरणा रहती है।

कला की प्रेरणा--फ्रायड के अनुसार कला और अर्थ, दोनों का उद्भव अचेतन मानस की संचित प्रेरणाओं और इच्छाओं में से होता है। इस कामशक्ति के उन्नयन के फलस्वरूप रचनाकार सृजन करता है। मानसिक जीवन में यथार्थ और सुखेच्छा के बीच जो संघर्ष होता है, उसका समाधान कलाकार कला के द्वारा ही करता है।

फ्रायड ने काव्य में कल्पना को बहुत महत्त्व दिया है। उन्होंने कवि-कल्पना को दिवास्वप्न माना है। उनके अनुसार कल्पनात्मक काव्य-संसार की अवास्तविकता का साहित्यिक प्रविधि पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

फ्रायड ने कल्पना-चित्र-सृष्टा व्यक्तियों को 'स्नायविक विकारग्रस्त' व्यक्तियों का समूह कहा है। उन्होंने दो प्रकार के साहित्यकार माने हैं। प्रथम वे, जो प्राचीन रचनाकारों एवं त्रासदी-प्रणेताओं की पूर्व-प्रस्तुत लोकमान्य सामग्री ग्रहण करके साहित्य का निर्माण करते हैं और दूसरे वे, जो अपने साहित्य की स्वयं रचना करते हैं। ये ही दिवास्वप्नदृष्टा अथवा 'स्नायविक विकारग्रस्त' समुदाय के व्यक्ति हैं। ऐसे साहित्यकार प्रेमाख्यान, कहानी, उपन्यास आदि की रचना करते हैं, जो मूलत: कल्पना पर आधारित हैं। उनकी अतृप्त इच्छाएँ या वासनाएँ ही उनकी रचनाओं के मूल में रहती हैं।

क्षतिपूरक सिद्धांत--फ्रायड ने मानव-मन की समस्त सर्जनात्मक क्रियाओं को क्षतिपूरक क्रिया के रूप में विवेचित किया है और कुण्ठा के उदात्तीकृत रूप को कला का नियामक-तत्त्व माना है। इस दृष्टि से साहित्य और कला प्रकृत-मूल्य सम्पन्न नहीं हैं। वे भ्रम हैं और थोथी क्षतिपूरक क्रियाएँ हैं, क्योंकि कल्पना-प्रवण लेखक की कृति में उसी की वर्जनाएँ काम-प्रतीकों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करती हैं। कला-सृजन, वस्तुत: काम-प्रतीकों का पुनर्निर्माण है। लेखक जीवन की विभीषिका और यथार्थता को वहन नहीं कर पाता, इसलिए वह संघर्षशील जगत् से पलायन करता है। इससे उसे क्षणिक सन्तोष प्राप्त होता है। अत: कला विशुद्ध रूप से एक शारीरिक प्रतिक्रिया है। इसमें नैतिकता या आध्यात्मिकता की खोज करना व्यर्थ है।

कला-चिन्तन का मूल स्रोत--फ्रायड के अनुसार कला-चिन्तन का मूल स्रोत काम है। उनके अनुसार धर्म, अर्थ, कला और संस्कृति के मूल में इसी की

प्रेरणा स्थित है। व्यक्ति की दमित एवं कुण्ठित असामाजिक प्रवृत्तियाँ अपने परिशोधित रूप में कला और संस्कृति का निर्माण करती हैं। वे मौलिक वस्तु न होकर कुण्ठा का उदात्तीकृत रूप हैं अथवा वर्जना का रूप-परिवर्तन हैं। विविध कलाएँ भौतिक और शारीरिक वर्जनाओं से ही होती हैं। इसीलिए फ्रायड ने कला को काम-प्रवृत्ति की तुष्टि मात्र माना है।

मनोवैज्ञानिक समीक्षक आई.ए.रिचर्ड्स ने भी तृष्णाओं की सन्तुष्टि के मूल में अचेतन की क्रियाओं को माना है। फ्रायड जहाँ काम अथवा राग की माध्यम सहज वृत्तियों के परिष्कृत या उदात्तीकृत रूप को ही सर्वोपरि मानते हैं, वहाँ रिचर्ड्स उससे भी आगे बढ़कर विरोधी मनोवेगों के सन्तुलन या समन्विति में काव्य के चरम मूल्य की बात कहते हैं।

इसके विपरीत, एडलर का विचार है कि ''काम-वृत्ति जीवन की प्राथमिक समस्या नहीं है। जब व्यक्ति काम-विषयक समस्याओं का अनुभव करता है, तब उसकी जीवन-शैली निर्मित हो चुकी होती है। 'काम' जीवन-शैली का एक अंश मात्र है, किन्तु इतना अवश्य है कि कुण्ठाओं और वर्जनाओं से श्रेष्ठ और उत्कृष्ट साहित्य की रचना सम्भव नहीं है और यदि ऐसा होता तो विश्व से सुन्दर-असुन्दर का, सत्साहित्य और असत्साहित्य का भेद मिट जाता। अतः कुण्ठाओं से श्रेष्ठ साहित्य की रचना सम्भव नहीं है।''

काव्य-मूल्य--फ्रायड के अनुसार काव्य या कला का उदात्त रूप सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों की एक प्रगतिशील उपलब्धि है। जब कुण्ठा के उदात्तीकरण की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है, तब उसकी बर्बरता जाती रहती है और उसमें सांस्कृतिक मूल्य का समावेश हो जाता है। इस प्रकार कला या काव्य से प्राप्त आनन्द की उपलब्धि हल्के उन्माद के रूप में होती है, जो जीवन की कठोरताओं से बचने के लिए एक अस्थायी आश्रय प्रदान करता है। इसी से फ्रायड कला में सम्प्रेषण को महत्त्वपूर्ण समझते हैं और साधारणीकरण की आवश्यकता पर बल देते हैं।

आलोचना-दृष्टि--फ्रायड की आलोचना-दृष्टि उनकी इस मान्यता पर आधारित है कि कल्पना-चित्र अपनी अन्तर्हित इच्छा से तथा तीनों कालों से सम्बद्ध हैं। इस दृष्टि से लेखक की कृतियों का परीक्षण तथा जीवन और कृतियों के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहिए और उन घटनाओं का पारस्परिक मूल्यांकन करना चाहिए। फ्रायड का अभिमत है कि एक यथार्थ अनुभव लेखक के मानस पर प्रबल प्रभाव अंकित करता है। वह किसी पूर्व अनुभव-स्मृति या साधारण बाल्यकाल की अनुभव-स्मृति को उद्वेलित करता है। इससे इच्छा उत्पन्न होती है, जिसकी पूर्ति उस कलाकृति से होती है। उस कृति में वर्तमान की घटना और अतीत

की स्मृति के तत्त्व अलग-अलग देखे जा सकते हैं।

फ्रायड का मत है कि "सृजनात्मक साहित्य के अध्ययन का यह प्रकार व्यर्थ नहीं जाता। कल्पना-प्रधान कृति, दिवास्वप्न की तरह बाल्यक्रीड़ा की शृंखला की ही एक कड़ी और उसकी स्थानापन्न है।"

इस प्रकार फ्रायड ने साहित्य-रचना का सम्बन्ध दिवास्वप्नों से जोड़ते हुए साहित्य की मनोवैज्ञानिक क्रिया का विवेचन किया है।

काव्य की अभिव्यक्ति--फ्रायड के अनुसार दिवास्वप्न (कवि-कल्पना) की अभिव्यक्ति ही काव्य है। उन्होंने अभिव्यक्ति के कलात्मक स्वरूप को ही काव्य या साहित्य कहा है।

फ्रायड ने कल्पनाप्रवण लेखक की तुलना क्रीड़ारत शिशु से की है, जिसका क्रीड़ा जगत्, यथार्थ जगत् से बिल्कुल पृथक् होता है। कवि भी बालक के समान कल्पना-छवियों का निर्माण करता है। उसे गम्भीर भाव से ग्रहण कर अपनी मानसिक सृष्टि को तीव्र रूप से यथार्थ से पृथक् करता है और अपनी बहुत-सी भावनाएँ उसमें सन्निविष्ट कर देता है।

फ्रायड की शक्ति और सीमा--फ्रायड की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि उसने अचेतन की खोज कर मानव-मनोविश्लेषण के लिए असीमित क्षेत्र का उद्घाटन कर दिया है। रहस्य के घने आवरण में पड़ी मानव और समाज की अनेक समस्याएँ बुद्धि और विवेक के प्रकाश में आईं। इससे जीवन के पुनर्मूल्यांकन के नवीन साधन उपलब्ध हुए।

दूसरी शक्ति यह है कि 'काम' को मूलभूत वृत्ति मानते हुए मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों का सटीक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। इससे जीवन में बौद्धिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में सहायता मिली है।

फ्रायड की कुछ सीमाएँ भी हैं। उनके निष्कर्ष अस्वस्थ व्यक्तियों की मन:स्थिति पर आधारित हैं। अत: वे स्वस्थ व्यक्ति का जीवन-दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

'काम' जीवन की मूल वृत्ति अवश्य है, परन्तु वह अंश ही है, सर्वांग नहीं। फ्रायड ने उसे सर्वांग मान कर अपने दर्शन को एकांगी बना दिया है समाज के लिए उनके पास कोई सन्देश नहीं है। फिर भी, फ्रायड ने प्रगति की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए साहित्यकार के व्यक्तित्व और साहित्य की प्रवृत्तियों के विश्लेषण के लिए नवीन मार्ग का प्रवर्तन किया है।

अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद (Existentialism) शब्द जर्मन भाषा के 'एग्जिस्टेन्स फिलॉसॉफी' के अनुवाद के हेतु प्रयोग में लाया गया था। साधारण भाषा में इसका अर्थ है--"जो भी है--पशु, पक्षी, वस्तु सभी का अस्तित्व है।" किन्तु अस्तित्ववादी भाषा में अस्तित्व का सम्बन्ध केवल मानव के अस्तित्व से है।

'अस्तित्व' का अंग्रेजी पर्याय 'एग्जिस्टेन्स' (Existence) है, जिसका साधारण भाषा में अर्थ है 'इन्द्रिय सुलभ प्रत्येक उपस्थिति'। 'दर्शनकोश' के अनुसार अस्तित्व का अर्थ है जीवित रहने की वह पद्धति, जो अन्य वस्तुओं के साथ समायोजन में निहित है।

"The mode of being which consists in interaction with other things."

अत: अस्तित्व का अर्थ केवल 'होना' ही नहीं है। प्रत्युत् 'होने की चेतना' है। जब तक अपने होने की 'चेतना' न हो तो, तब तक 'होना' अस्तित्व में परिणत नहीं किया जा सकता। 'मैं हूँ' या 'यह मैं हूँ'--इस तरह की अनुभूति ही किसी भी प्राणी, वस्तु अथवा पदार्थ को अस्तित्वशील बना सकती है और इसी आधार पर अस्तित्ववाद का दर्शन स्थित है।

'अस्तित्ववाद' अपने वर्तमान अर्थ में 19वीं शती के मध्य की उपज है। इसकी पृष्ठभूमि में औद्योगिक क्रान्ति जनित वह भौतिकता थी, जो मनुष्य-अस्तित्व की अवहेलना कर उसे निर्मूल्य कर रही थी। मनुष्य-अस्तित्व के इस अवहेलनात्मक सामाजिक दृष्टिकोण की प्रतिक्रियास्वरूप कुछ चिन्तकों ने परम्परागत सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य-मान्यताओं को निष्प्राण घोषित कर विशुद्ध मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। इन चिन्तकों में जर्मनी के फ्रेडरिक नीत्शे, कार्ल जेस्पर्स, मार्टिन हेडेगर, फ्रांस के ग्रेबियल मार्सेल, ज्याँपॉल सार्त्र, अल्बर्ट कामू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डेनमार्क के सारेन किर्कगार्ड इस दार्शनिक प्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं।

अस्तित्ववादी विचारकों में सर्वाधिक महत्त्व सार्त्र को दिया जाता है। साहित्य के क्षेत्र में इस दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यापकत्व प्रदान करने वाले प्रथम दार्शनिक साहित्यकार सार्त्र ही हैं। अत: साहित्य में अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रारम्भ सार्त्र से ही होता है, जिसका अनुकरण बाद में बहुत-से लेखकों ने किया।

अस्तित्ववाद का स्वरूप--अस्तित्ववाद के अनुसार 'अस्तित्व' महत्त्वपूर्ण है। इसलिए सभी अस्तित्ववादी परम्परागत सिद्धांतों के विरोधी हैं।

अस्तित्व के दो रूप हैं--धार्मिक और कला-सम्बन्धी।

धार्मिक रूप को प्रमुखता देने वाले दार्शनिकों का मत है कि मानवीय संघर्ष की क्रियाशीलता धार्मिक क्षेत्र में होनी चाहिए, जो ईश्वर-प्राप्ति का माध्यम बन सके। दर्शन, वस्तुतः इसी आधार पर विज्ञान से श्रेष्ठ होता है कि विज्ञान केवल वस्तु-जगत् का अध्ययन करता है। अस्तित्ववादी अध्ययनों में वे रहस्य छिपे रहते हैं, जिनसे मानव जूझता है और विश्वास-श्रद्धा का आधार स्वयं बनता है। इस आन्तरिक आत्मिक अनुभव को विज्ञान स्पर्श नहीं करता।

कार्ल जेस्पर्स का मत है कि जगत् का कोई भी तर्कपूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तथा बुद्धिवादियों का इस दिशा में कोई भी प्रयास व्यर्थ है, क्योंकि यह बहुत सम्भव है कि अस्तित्व के लिए वह 'मूर्त्तिशून्य' ही हो, जिसकी व्याख्या आवश्यक है। जगत् मृग-तृष्णा या माया नहीं है। अस्तित्व का वास्तविक अर्थ किसी मानव को किसी हठात् आघात (Shock) के माध्यम से ज्ञात हो सकता है। इस ज्ञान को आघात के माध्यम से ही प्राप्त करके मानव अपने दैनिक जीवन की दुश्चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है।

कामू और सार्त्र अस्तित्ववाद के कला-सम्बन्धी रूप के स्थापक और पोषक हैं। इस 'वैयक्तिक आदर्शवादी कला सिद्धांत' का प्रतिपादन ज्याँपॉल सार्त्र ने 'अस्तित्व एवं मानव-स्वातंत्र्य' में किया है। इस सिद्धांत के अनुसार कलाभिव्यंजना का मूल उद्देश्य 'अस्तित्व-सम्बन्धी विकिरण' है, जिसका अभिप्राय है--कला का उद्देश्य अतर्कवादी वैयक्तिक अनुभवों एवं दृष्टि-बोध का विकिरण करना।

वस्तुतः अस्तित्ववाद के अनुसार कला एवं साहित्य का उद्देश्य परोक्ष भावानुभूतियों का चित्रण करना होता है। ऑस्ट्रिया के कवि रिलके के सॉनेट और ऐलिगी (शोक-गीत) में इस प्रकार का चित्रण कुशलतापूर्वक किया गया है।

अस्तित्ववादी विचारक ज्ञान-विज्ञान को महत्त्वहीन मानते हैं। उनके लिए वह सब कुछ व्यर्थ है, जिससे अस्तित्व-बोध में सहायता नहीं मिलती। अस्तित्ववादी पूर्ण स्वतन्त्रता में जीकर अन्त में मृत्यु को 'अस्तित्व' का अनिवार्य अंश मानकर उसका साहसपूर्वक वरण करना चाहते हैं। सार्त्र का कथन है--''मृत्यु नहीं आती है, जब तक 'मैं हूँ', मृत्यु के आने के बाद 'मैं हूँ ही नहीं', इसलिए बाधा कैसी? जन्म की भाँति मृत्यु भी एक शुद्ध तथ्य है।''

अस्तित्ववादी के लिए स्वतन्त्रता ही जीवन-दर्शन का मूलाधार है और मूल्यहीन साहित्य-दर्शन का एकमात्र मूल्य।

अस्तित्ववादी दर्शन का प्राण-तत्त्व चयन की स्वच्छन्दता अथवा वैयक्तिक

स्वच्छन्दता है। इसलिए उनके साहित्य में घोर अराजकता, उन्मुक्त भोग, यौनवादिता, नास्तिकता, असामाजिकता, विज्ञान-विरोधिता आदि अनेक अनाचारी एवं अवांछनीय तत्त्वों की बहुलता पाई जाती है।

अस्तित्ववाद की विशेषताएँ--अस्तित्ववादी जीवन-दृष्टि में मनुष्य की समस्या ही सर्वोपरि है। उसका ठोस अस्तित्व, व्यक्तिगत स्वच्छन्दता तथा अपने क्रिया-कलापों के निर्माण एवं उत्तरदायित्व का स्वतन्त्र अनुभव ही वे स्तम्भ हैं, जिन पर अस्तित्ववादी दर्शन का महल खड़ा है। साहित्य के क्षेत्र में यह जीवन-दृष्टि पूर्णत: व्यक्तिवादी, आत्मकेन्द्रित, अन्तर्मुखी और आत्मनिष्ठ विचारधारा है। अस्तित्ववाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं--

1. **व्यक्तिगत स्वच्छन्दता पर बल**--अस्तित्ववादी दर्शन में स्वातन्त्र्य का बहुत महत्त्व है। ज्यों ही मनुष्य अस्तित्व में आता है, वह अपने स्वतन्त्र चयन द्वारा कार्य करके अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करता है। कोई दैवी शक्ति उसके स्वभाव को नहीं बनाती। अस्तित्ववादी सभी प्रकार के परम्परित जीवन-मूल्यों के प्रति विद्रोह करना सच्ची वैयक्तिक स्वच्छन्दता मानते हैं। उनके अनुसार जीवन की निरर्थकता के प्रति विद्रोह करने वाले ही सच्चे अर्थों में मुक्त हैं। जिन्हें इस निरर्थकता का बोध हो गया, वे जीवन के प्रति सही अर्थ में विद्रोही हैं। इस विद्रोह का अभिप्राय है जीवन के परम्परागत मान-मूल्यों के प्रति; समाज, धर्म, नीति आदि से सम्बन्धित धारागाओं एवं विचारों के प्रति विद्रोह।

2. **मानवतावादी दर्शन**--सार्त्र अस्तित्ववादी दर्शन को मानवतावादी दर्शन की संज्ञा देते हैं। मनुष्य की पूर्ण गरिमा, उसके कृतित्व, अस्तित्व आदि का मतलब यही है कि उसे सभी प्रकार की पराधीनता से मुक्त कर दिया गया है। उस पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं है। स्वतन्त्रता ही अस्तित्ववादी दर्शन का मूल है।

पूर्ण स्वतन्त्रता तथा अपने-आपको बनाने की स्वतन्त्रता मनुष्य के ऊपर विशेष प्रकार का दायित्व प्रदान कर देती है। मनुष्य पूर्णतया अपने प्रति उत्तरदायी है। वह जो कुछ भी है, अपनी इच्छा से है। वह अपने को जैसा बनाना चाहता है, वैसा बना सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना भविष्य चुनने के लिए स्वाधीन है, किन्तु अस्तित्ववाद में उत्तरदायित्व की उपेक्षा नहीं की गई है। इतना निश्चित है कि अस्तित्ववादी विचारधारा वाला व्यक्ति सामाजिक दायित्व की परवाह नहीं करता।

3. **जीवन की निरर्थकता का अनुभव**-- अल्बर्ट कामू मानव की अभिलाषाओं एवं आशाओं का इस निरर्थक संसार से अनवरत संघर्ष मानते हैं, क्योंकि उनका प्रतिफलन असम्भव है। अत: संसार के सभी व्यापार अकारथ हैं।

मानव का जीवन एक निरर्थक प्रयास है। जैसे सिसीफस का पहाड़ पर पत्थर चढ़ाने का प्रयास और फिर नीचे गिर पड़ने का क्रम। आधुनिक सभ्यता में मानव-जीवन भी इसी प्रकार व्यर्थ एवं अकारथ है। अस्तित्ववादी कामू इसी अनर्गल बोध से प्रभावित होते हुए निराशावादिता, पीड़ा, एकाकीपन एवं वैयक्तिक स्वच्छन्दता की ओर अग्रसर हैं।

4. **मानव-स्थिति को पीड़ाजनक मानना**--अस्तित्ववादी मानव-स्थिति को पूर्णतः दुःखद और पीड़ाजनक मानते हैं। इस दृष्टि से वे घोर निराशावादी हैं। पीड़ा, संत्रास, दुःख, यातना, एकाकीपन अथवा आत्म-निर्वासन से युक्त जीवन जीना मनुष्य की अनिवार्य स्थिति है। वे मानव-स्थिति का सीमा-निर्धारण करते हुए मृत्यु को उसकी सीमा मानते हैं।

5. **मृत्यु-बोध**--अस्तित्ववादी मृत्यु को मानवीय स्थिति की सीमा मानते हैं। उनकी दृष्टि से मृत्यु की उपयोगिता है। वह जीवन का शुद्ध तथ्य है, क्योंकि मृत्यु से ही मनुष्य में निरासक्ति का भाव पैदा होता है तथा अस्तित्व-बोध के लिए मृत्यु जैसे धक्के की आवश्यकता है। मृत्यु-बोध मनुष्य को अस्तित्व-बोध कराने का महत्त्वपूर्ण अनुभव है; जैसे--टॉलस्टॉय की कहानी 'ईवान इलिच' में मृत्यु का प्रसंग, जिसमें अति सम्पन्न, पूर्णतः प्रतिष्ठित और अपने जीवन में अति सफल व्यक्ति ईवान इलिच को अचानक सीढ़ियों से गिरकर मरते हुए जीवन के प्रति मोह पैदा होता है। इलिच के शब्द--''काश, मैं जीवन फिर से प्रारम्भ करता''-- इस बात के द्योतक हैं कि आज की सभ्यता ने मनुष्य को अकेला कर दिया है। वह अपना आपा खो चुका है।

हिन्दी की नयी कविता में अस्तित्ववादी लहर व्याप्त है। नयी कविता के रचनाकारों में धर्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, दुष्यन्त कुमार, कुँवर नारायण, अज्ञेय आदि की कविताओं में अनास्था, अस्तित्व-बोध, मृत्यु-बोध, वैयक्तिक स्वच्छन्दता, निराशा, पीड़ा, उन्मुक्त भोग आदि प्रवृत्तियों की अनुगूँज पाई जाती है।

6. **निराशा का महत्त्व**--अस्तित्ववादी दर्शन में निराशा का भी एक आधार है। इसका कारण है अपार सम्भावनाओं की स्थिति। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है, वह परिस्थितियों और रुचि तथा विवेक के अनुसार निर्णय करता है, फिर भी, उसे वह नहीं मिलता, जो वह चाहता है। इसका मतलब हुआ कि व्यक्ति इच्छा करने में तो स्वतन्त्र है, किन्तु इच्छा को पूर्ण करना उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। जैसे--एक व्यक्ति अपने मित्र के आने की प्रतीक्षा करता है, किन्तु उसका मित्र समय पर पहुँच जाएगा, इस पर उसका अधिकार नहीं है। इस विषय में वह कुछ भी

नहीं कह सकता। मित्र का समय पर आना अनेक बातों पर निर्भर करता है वे बातें न तों मित्र जानता है और न उन पर उसका अधिकार है। इस प्रकार अनेक सन्दर्भ इस तथ्य से जुड़े हैं। इस प्रकार अस्तित्ववादी दर्शन में निराशा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

7. **नैतिकता और उत्तरदायित्व की भावना**--अस्तित्ववादी दर्शन की मान्यता है कि मनुष्य जब स्वतन्त्रतापूर्वक चयन करता है तो कभी अशिव का चयन नहीं करता। वह मंगल एवं सत्य को ही मूल्य बनाता है। वह अपनी आत्मिक स्वतन्त्रता का उपभोग करता हुआ शक्तिशाली हो जाता है और शक्तिशाली कभी भी अनुचित व्यवहार नहीं करता। नीत्शे का मत है कि "जो व्यक्ति शक्ति प्राप्त करना चाहता है, वह कोई भी उपाय काम में ला सकता है, किन्तु जिसने शक्ति प्राप्त कर ली है, वह सदैव सज्जनता, सभ्यता और ईमानदारी का व्यवहार करेगा।"

स्वतन्त्रता के साथ उत्तरदायित्व का भाव भी संलग्न है। मनुष्य स्वतन्त्र है तथा उत्तरदायी भी। जिस मनुष्य में उत्तरदायित्व की भावना नष्ट हो जाती है, उसका विकास भी रुक जाता है। सार्त्र का मत है कि मनुष्य प्रत्येक कर्म के लिए स्वयं उत्तरदायी है। अस्तित्ववाद का प्रथम प्रयास यही है कि मनुष्य को उसके प्रति सजग किया जाए। परिस्थितियों की आड़ लेकर उत्तरदायित्वों से दूर भागना अनैतिक है, अनुचित है। अस्तित्वशील मानव अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग करता हुआ आत्मिक रूप से अनुभूत मूल्यों का पालन करता है। अपने लिए मूल्यों का चुनाव मानव उत्तरदायित्वपूर्वक स्वयं करता है।

अस्तित्ववाद का विकास--अस्तित्ववाद की भूमिका नीत्शे एवं किर्कगार्ड ने उन्नीसवीं सदी में ही तैयार कर दी थी। यद्यपि उन्होंने कोई दर्शन प्रतिपादित नहीं किया, तथापि उनके विचार अस्तित्ववादी दृष्टिकोण को प्रेषित करते हैं और इसी कारण वह आधुनिक युग के अस्तित्ववाद का प्रवर्तक बन गये। उनके अनुसार धर्म आन्तरिक विकल्प होता है, जिसमें श्रद्धा की आवश्यकता होती है। कला, विज्ञान एवं इतिहास उसके पूरक हैं और उसके अंग हैं। जीवन मानव के निश्चय पर निर्भर करता है। मानव उत्सुकता की स्थिति में रहता है और निराशा के मार्ग से गुजरता है। इन्हीं विचारों के आधार पर जर्मनी में अस्तित्ववादी विचारधारा का सूत्रपात हुआ।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हेडेगर ने अस्तित्ववादी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके अनुसार मानव असहिष्णु संसार में अपने उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु संघर्ष करता है, जिसका परिणाम 'न कुछ' तक पहुँचते-पहुँचते मृत्यु तक पहुँच जाता है।

जेस्पर्स के अनुसार विधान और दर्शन, दोनों ही सत्य की खोज में असफल हैं।

कोई भी व्यक्ति एकान्तिक नहीं है। अस्तित्व का भी विस्तार होता है। समस्त अध्यात्म दार्शनिक के लिए एक 'अस्तित्ववान्' की खोज है। इनकी दृष्टि में भी *निराशा एवं खीझ का प्रतिपादन* तथा मृत्यु का अनिवार्य भय है, जो अस्तित्व की चरम तृप्ति है।

ज्याँपॉल सार्त्र नास्तिक अस्तित्ववाद के प्रतिपादक हैं। उनका मत है कि ईश्वर मर चुका है। वस्तुतः अस्तित्ववाद 'नास्ति' की स्थिति में निकाले गए प्रयासों या परिणामों का प्रयास मात्र है। सार्त्र ने 'ईश्वर है' के विचार को नकारा है तथा अस्तित्व को सार से भी पूर्व की स्थिति माना है। चेतन विषय अपने लिए होता है और वस्तु-जगत् स्वयं में होता है। मानव कुछ भी करने में स्वतन्त्र है, परन्तु वह मृत्यु के भय से ग्रस्त रहता है।

अस्तित्ववाद की उपलब्धियाँ--अस्तित्ववाद आधुनिक युग की सबसे बड़ी विशेषता और माँग--व्यक्तिगत मानवीय स्वतन्त्रता पर विशेष बल देता है। मानव को व्याख्यायित करना, मानव-चेतना का मूल्य बताना, मानव को पूर्णरूपेण उत्तरदायी सिद्ध करना तथा अपरिहार्य मृत्यु के लिए उसे तैयार करना अस्तित्ववाद की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

मानव की जो व्याख्या और परिभाषा इस दर्शन में प्रस्तुत की गई है, उसको कहीं से भी निरस्त नहीं किया जा सकता।

यह वर्ग-समुदाय की सारहीनता को सिद्ध करता है और नये यथार्थ-बोध के आधार पर नवीन मूल्य-बोध के सृजन द्वारा जीवन और जगत् में क्रान्ति लाते रहने का पक्षधर है, जिससे कोई मूल्य-बोध जड़ न हो जाए।

उत्तर-आधुनिकतावाद

उत्तर-आधुनिकतावाद एक जटिल प्रत्यय है, जो पाश्चात्य विश्वविद्यालयों में बड़ी तीव्रता से फैला है। पश्चिम में अमेरिकी विचारकों ने एक सीमा तक इसे विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इसके सम्बन्ध में विचार करते समय अनेक प्रश्न उठते हैं। यह आधुनिकता से एकदम भिन्न है या उसी का अगला चरण है? इसके अपने लक्षण क्या हैं? इसका प्रभाव भारत में तथा तीसरी दुनिया के देशों अथवा विकासशील देशों पर क्या पड़ रहा है?

उत्तर-आधुनिकतावाद का उद्भव--उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रचलन 20वीं शती के सातवें और आठवें दशक में हुआ है। इसके दर्शन सबसे पहले वास्तुकला

के क्षेत्र में होते हैं। इस सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने का श्रेय रॉबर्ट बेंतुरी और जेम्स स्टर्लिंग को जाता है। उन्होंने इसका प्रयोग वास्तुकला की अन्तरराष्ट्रीय शैली के विरोध में किया और इसी क्षेत्र में आधुनिकता के अवसान की घोषणा की गई। इसे फ्रांसीसी उत्तर-संरचनावादियों--देल्यूज़, दरिदा, माइकेल फुको से अधिक बल मिला। ये सब आठवें दशक में क्रियाशील थे और अनेक अर्थों में एक-दूसरे से मिलते-जुलते थे तथा समान थे। ये सभी यथार्थ के खण्डित, परस्पर-विरोधी और विजातीय तथा बहुवाची या अनेकान्तवादी चरित्र के समर्थक थे। बाद में उत्तर-आधुनिकतावादी कला, उत्तर-दर्शन, उत्तर-आधुनिकतावादी सिद्धांतों को एक-दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया।

उत्तर-आधुनिकतावाद की अवधारणा--उत्तर-आधुनिकतावाद उत्तर और आधुनिकता के योग से बना है। उत्तर का अर्थ है--बाद का अर्थात् दो-तीन दशकों में व्याप्त साहित्यिक चेतना अथवा प्रयोगवादी या नयी काव्यधारा से पृथक् प्रकार की साहित्यिक चेतना। इसी तरह आधुनिकतावाद 'आधुनिक' और 'वाद' शब्दों से जुड़कर बना है। इसका अर्थ है आधुनिकता से सम्बन्धित सामग्री। आधुनिकता, आधुनिक की भाववाचक संज्ञा है।

अंग्रेजी में आधुनिक के लिए 'मॉडर्न' (Modern) शब्द हैं। इसका अभिप्राय है आज के युग से सम्बन्धित विचारधारा।

अतः उत्तर-आधुनिकतावाद का अर्थ हुआ--वह विचारधारा, जो आधुनिक युग के भी बाद की है। उत्तर-आधुनिकतावाद शब्द में पहले लगा 'उत्तर' शब्द इसी मन्तव्य को स्पष्ट करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उत्तर-आधुनिकतावाद अपने समय (युग) के अन्तर्विरोधों, द्वन्द्वों की उत्पत्ति है। इसमें, जो हो रहा है, उसका सीधा खुलासा है। उत्तर-आधुनिकतावादी साहित्य से वर्तमान काल का बोध होता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते और ठोकर खाते हुए वास्तविक आदमी का वर्णन है।

यह साहित्य गत्यात्मक है, स्थिर नहीं। इसका रूप इतनी शीघ्रता से बदलता है कि इससे दिशाहीनता का बोध होने लगता है। इस प्रकार गति ही इसके आकर्षण का मुख्य कारण है।

आधुनिकतावाद में हमारी सोच निरन्तर बदलती रहती है। हम एक क्षण के लिए किसी चिन्तनधारा में रुककर सोच नहीं सकते, क्योंकि अगले ही क्षण हमारे सामने नयी सोच उपस्थित हो जाती है। पाश्चात्य समीक्षक टेरी इगलटन ने उत्तर-

आधुनिकतावाद के अनेक स्रोत स्वीकार किए है; यथा--

1. यथोचित आधुनिकतावाद
2. कथित उत्तर-आधुनिकतावाद
3. सजीव नयी ताकतों का उद्‌भव
4. सांस्कृतिक अग्रगामिता का पुन: प्रकोप
5. कला के लिए एक स्वायत्त भूमि का क्षीण होते जाना
6. कुछ निश्चित शास्त्रीय बुर्जुआ विचारधाराओं का नि:शेषण

लियोतार्द आधुनिकतावाद का सम्बन्ध 'ग्रैण्ड नरेटिव' से जोड़ते हैं, जिसमें एक सिलसिला होता है, समग्रता होती है, आध्यात्मिकता का द्वन्द्व होता है। उत्तर-आधुनिकतावाद, आधुनिकतावाद से भिन्न है या उसका अगला चरण है। दोनों ही मत एक-दूसरे का विरोध करते हैं।

कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि हम उत्तर-आधुनिकतावाद के युग में रहते हैं। इस युग की अपनी विशेषताएँ हैं, अपनी जीवन-शैलियाँ हैं, अपना सौन्दर्यशास्त्र है और उसका स्वतन्त्र विवेचन है।

लियोतार्द के मतानुसार उत्तर-आधुनिकतावाद आधुनिकता के भीतर की ही एक प्रवृत्ति है, जो किसी वस्तु पर विलाप नहीं करती है। वह यथार्थता, क्रमबद्धता और समग्रता की अन्विति को स्वीकार नहीं करती है। इस सिद्धांत के विचारकों को प्रगति और परिवर्तन में अगाध विश्वास था। वे अपने सिद्धांतों के अनुसार यथार्थ को प्रस्तुत करते थे।

हेमर मास उत्तर-आधुनिकतावाद में भी आधुनिकता की कुछ विशिष्टताओं को बनाए रखना चाहते हैं।

उत्तर-आधुनिकतावादी यह नहीं सोचते कि दुनिया कैसी है और इसकी व्याख्या कैसे की जाए, वरन् ये लोग दुनिया को वैसी ही स्वीकार करते हैं जैसी वह है, क्योंकि इसमें एकता की जगह बहुलता, एकरूपता की जगह बहुरूपता और समत्व की जगह अन्यत्व है।

उत्तर-आधुनिकतावाद की विडम्बना--उत्तर-आधुनिकतावाद की चिन्ता विडम्बना के प्रति बहुत गहरी है, किन्तु एक विडम्बना उससे बची हुई है। उत्तर-आधुनिकतावाद पूँजीवाद की सफलता का पक्षधर रहा है। आज भी अधिकांश सरकारें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के गीत गा रही हैं। सत्ता-प्राप्त नेता बार-बार घोषणा

कर रहे हैं कि उदारीकरण के कारण आज बहुलतावाद है, परिणामशीलता है और खुलापन है। परिणामस्वरूप, आज साम्यवादी विचारधारा का समर्थन करने वाले लोग दब गए है और पूँजीवाद सफलता की ओर अग्रसर हो रहा है।

इस प्रकार उत्तर-आधुनिकतावाद और आधुनिक पूँजीवादी सफलता में गहरा सम्बन्ध है। इसी पूँजीवाद के कारण आज समाज का बहुत बड़ा वर्ग गरीबी स्तर से नीचे रह रहा है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण धनी अधिक धनी होता जा रहा है, निर्धन आवश्यक सुविधाओं से वंचित हो रहा है।

पूँजीवाद और उत्तर-आधुनिकतावाद--आधुनिक युग में पूँजीवाद पूरे समाज को लामबन्द करने का प्रयास कर रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका के नेतृत्व ने पूरे समाज को लामबन्द करने का प्रयास किया, क्योंकि वह लम्बे समय से आर्थिक विकास की ऊँची दर को अर्जित करता आ रहा था। अमेरिका अन्य देशों को भी साम्यवाद के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित करना चाहता था। पूँजीवाद समाज को दिशा दिखाकर अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना चाहता था। संसार के विकासशील देशों में भी पूँजीवाद का लगभग भूमण्डलीकरण हो चुका है। यही उत्तर-आधुनिकतावाद को सर्वाधिक प्रभावित करता रहा है।

धीरे-धीरे पूँजीवाद का भूमण्डलीकरण जहाँ उत्तर-आधुनिकतावाद को जन्म दे रहा है, वहीं वह उसके स्वरूप और परिणाम को भी बदल रहा है।

उत्तर-आधुनिकतावादी मानसिकता--उत्तर-आधुनिक परिस्थिति एक विशेष प्रकार की मानसिकता है। इसे उत्तर-आधुनिक मानसिकता भी कह सकते हैं। यह मानसिकता ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ के कारण पैदा हुई है, किन्तु उत्तर-आधुनिकतावादी मानसिकता इस ओर ध्यान नहीं देती। यही कारण है कि उत्तर-आधुनिकता जहाँ एक ओर हमारे बौद्धिक जीवन के विचारों तथा मान्यताओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई है, वहाँ दूसरी ओर 21वीं सदी की पूँजीवाद की जन-संस्कृति में भी लक्षित हो रही है। आज विचार-विमर्श, पुस्तकीय चिन्तन, सेमिनार आदि के द्वारा लोगों के जीवन के बारे में चिन्तन किया जा रहा है, किन्तु उस चिन्तन को क्रियान्वित नहीं किया जा रहा है। पूँजीवाद की जो विशेषताएँ 21वीं सदी की जन-संस्कृति का निर्माण कर रही हैं, वही उत्तर-आधुनिकतावाद की छवि का निर्माण भी कर रही हैं।

सामन्ती ठहराव के कारण ग्रामीण जीवन में बिखराव आ गया है। लोग अधिकाधिक नियतिवादी बन रहे हैं। इस स्थिति के पीछे धर्म का बहुत बड़ा हाथ है। दूसरी ओर शहरी जीवन में भाग-दौड़ है। पूँजीवाद व्यक्ति-केन्द्रित मानसिकता

को पुष्ट कर रहा है। वस्तुतः उत्तर-आधुनिकतावादी मानसिकता के पीछे आज के पूँजीवाद के क्रिया-कलाप ही उत्तरदायी हैं। ये ही इसके उद्भव और विकास की भूमिका तैयार कर रहे हैं।

मूल्यांकन--उत्तर-आधुनिकतावाद में कम्प्यूटर-युग, दूरसंचार-माध्यम, प्रौद्योगिकी के कारण जो नयी स्थितियाँ पैदा हुई हैं, उन्हीं से उत्तर-आधुनिकतावादी चेतना का विकास हुआ है। इसमें तर्क, इतिहास, यथार्थ, रूप, सभी का नकार है। यह एक अराजकतावादी प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति से उद्भूत उपभोक्तावाद ने हमारी संस्कृति और मूल्यों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। इसे एक प्रकार के नकारात्मक सौन्दर्य-बोध का आह्लाद कहा जा सकता है। इसके आलोचनात्मक सिद्धांत उत्तर-संरचनावादियों में मिलते हैं।

उत्तर-आधुनिकतावाद की नकारात्मकता के कारण दरिदा ने इसे 'अनुपस्थिति की खोज' कहा है।

23

समकालीन आलोचना

आधुनिक भावबोध

आधुनिक बोध महानगरों में बसने वाले मनीषियों का दृष्टि बोध है, जो ग्रामों और छोटे शहरों में रहने वालों की समझ में कठिनाई से आता है। साहित्य में, सामान्यत: जिसे आधुनिक बोध कहा जाता है, वह कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। मूल्य शायद वह है ही नहीं। मूल्यों के विघटन से उत्पन्न वह एक दृष्टि है, जिसमें घबराहट, निराशा, शंका, त्रास और असुरक्षा के भाव हैं। अतएव आधुनिक बोध की सारी व्याप्तियाँ ऐसी नहीं हैं, जो आँख मूंद कर स्वीकार कर ली जाएँ।

साहित्य में आधुनिक बोध के अन्यतम प्रवर्तक फ्रांसीसी कवि मालार्मे ने कहा था कि ''कृति का विषय बाहर आता है। अतएव जो भी कलाकार अपना ध्यान विषय पर केन्द्रित करता है, वह शुद्ध कलाकार नहीं है। शुद्ध कलाकार तो वही हो सकता है, जिसका सारा ध्यान कृति पर केन्द्रित है, भाषा, शैली और शब्दों में सन्निविष्ट है।''

पश्चिमी देशों के कलाकार मुख्यत: शैली के कलाकार हैं। वे पाठकों को चौंकाते हैं, उनकी शान्ति भंग करते हैं, किन्तु उन्हें ज्ञान नहीं देते, उपदेश नहीं देते, क्योंकि इनके अनुसार ज्ञानदान और उपदेशवाद की गंध आने से कला सोद्देश्य हो जाती है और सोद्देश्यता कला का सबसे बड़ा अपराध है।

आधुनिक बोध का एक अन्य प्रखर लक्षण यह है कि कलाकार कर्म के प्रति अपनी प्रतिबद्धता स्वीकार नहीं करता। कर्म का त्याग सोद्देश्यता के त्याग से उत्पन्न हुआ है अथवा सोद्देश्यता का त्याग कर्म त्याग का परिणाम है, यह स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। केवल अनुमान होता है कि उद्देश्य का त्याग पहले किया गया, कर्म

का त्याग उसके बाद आया है। ज्ञान और उपदेश कर्म के आदि सोपान हैं। जो लेखक ज्ञान या उपदेश की ओर झुकता है, निश्चय ही वह समाज को किसी कर्म की ओर प्रेरित करना चाहता है।

कर्म से यहाँ तात्पर्य खाने-पीने और रोजी कमाने से नहीं है, बल्कि तात्पर्य राष्ट्रीयता से है, युद्ध से है, समाज को परिवर्तित करने वाले आन्दोलन से है। पश्चिमी देशों के कलाकार इन कर्मों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता स्वीकार नहीं करते। वे केवल कवि होकर ज़ीना चाहते हैं।

आधुनिक होने की सार्थकता इसमें है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अधिगत अद्यतन बौद्धिक विकास का स्फूर्तिपूर्वक सजग रूप में स्वागत करे या करने को तैयार रहे।

भाव बोध के दो अर्थ हो सकते हैं--एक तो भाव जगत् का सूक्ष्म और बाह्य भौतिक जगत् का स्थूल बोध व दूसरा जिसे हम हृदय का भाव कहते हैं, वह सत्ता।

भाव बोध अपने-अपने ढंग से सभी युगों में होता है। अर्थात् प्रत्येक युग के सभी क्षेत्रों के वैशिष्ट्य अलग-अलग होते हैं, जो कवि युग विशेष के इन सभी वैशिष्ट्यों को अपनी यथार्थता में सहज भाव से अपनी रचना में उतारकर रख देता है, उसे युग बोध प्रधान कवि कहते हैं।

विडम्बना

आधुनिक आलोचना की एक प्रवृत्ति है--रूपात्मक समीक्षा, जिसका प्रचलित नाम नयी समीक्षा है। नयी समीक्षा का मूल सिद्धांत है कि कविता का स्वतंत्र और सुनिश्चित अस्तित्व है, जो कवि तथा सामाजिक परिवेश से पृथक् है। नयी समीक्षा के उन्नयाकों में जान क्रो रैन्सम, एलन टैट, रिचर्ड पी. ब्लैकमर और क्लीन्थ ब्रुक्स प्रमुख हैं।

विडम्बना नयी समीक्षा का मूलभूत शब्द है, जिससे उसका अन्तःस्वरूप समझा जा सकता है। नयी समीक्षा को भाषिक संरचना भी कहा जाता है। क्लीन्थ ब्रुक्स ने अपनी आलोचनात्मक शब्दावली में विडम्बना शब्द का प्रयोग किया है और उसे व्यापक अर्थ देने का प्रयास किया है। विडम्बना काव्य भाषा का अपना गुण है, जो उसे विद्वान की अभिधात्मक भाषा से अलग करता है। विडम्बना के संबंध में उनका कथन है--

''Irony is the most general term that we have for the kind of qualification which the various elements in the context. This kind of

qualification......................is of tremendous importance in any poem. More over irony is our most general term for indicating that recognitions of incongruities."

अर्थात् विडम्बना एक खास सन्दर्भ में आये हुए अन्तर्विरोधों द्वारा पहचानी जाती है। विडम्बना काव्य भाषा का सामान्य वैशिष्ट्य है।

अरस्तू की भाषा में यह विपरीत अर्थ धारण करने वाले रूपक हैं। कॉलरिज इसी को कल्पना की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार विडंम्बना व्यक्तियों की वक्रता है। इसे व्यापक अर्थ में ग्रहण न करने के कारण हिन्दी समीक्षा में मजाक को भी कविता मानने का आग्रह किया जाने लगा है।

विसंगति

काव्य-भाषा के अनोखेपन या भाषिक सृजन को नये समीक्षकों ने अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है। क्लीन्थ ब्रुक्स इसे विसंगति में देखते हैं। एलन टेट इसे तनाव शब्द द्वारा विवेचित करते हैं। रैन्सम की दृष्टि में यह टेक्श्चर और स्ट्रक्चर का तनाव है, जबकि टेक्श्चर और स्ट्रक्चर में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। ब्लैकमर भाषा को जेश्चर या सांकेतिकता मानते हैं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति रचना की आन्तरिक संगति शब्दों के पारस्परिक संबंध या संरचना को ही काव्य कहता है।

संरचना का अभिप्राय मूल्यांकन और अर्थापन की सरंचना है। इसमें अन्विति का सिद्धांत निहित होता है, जो लाक्षणिकता, अभ्युद्देश्य और अर्थों को संगतिपूर्ण और संतुलित बनाता है। अन्विति की प्रकृति जटिल होती है। यह एक ही प्रकार के अनेक तत्त्वों को समंजित नहीं करती, अपितु एक-दूसरे के विरोधी तत्त्वों में सामंजस्य स्थापित करती है। इसमें प्रक्रिया विरोधी तत्त्वों को अन्तर्भुक्त किया जाता है, क्योंकि यह निश्चयात्मक अन्विति है। अन्तर्विरोधों के इस सामंजस्य को ब्रुक्स विसंगति में देखता है। विसंगति काव्य-भाषा का अपना गुण है। अतः विसंगति अन्तर्विरोधी का सामंजस्य है। रैन्सम उपमा और रूपक को ऐसा सटीक साधन मानते हैं, जिनसे काव्य में असंगति पैदा होती है। क्लीन्थ के मत में काव्य रचना का आधार विसंगति है। कविता मूलतः भाव या अनुभूति है, जिसे व्यक्त करने के लिए विशिष्ट भाषा की जरूरत होती है। भारतीय आचार्यों ने इसे 'विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्' कहा है। वक्रोक्ति सम्प्रदाय विसंगति जैसे तत्त्व पर ही आधारित है।

अन्तर्विरोध

नयी समीक्षा में काव्यात्मक अन्तर्विरोध की चर्चा भी विस्तार से हुई है।

कविता में विरोधी शक्तियों और अर्थों की परस्पर सम्बद्धता में तनाव की उपस्थिति मानी गयी है। विलियम एम्पसन शब्द के विभिन्न अर्थों के मध्य आये तनाव से काव्य-भाषा का विश्लेषण करते हैं। रैन्सम-तन्तु विन्यास व संरचना में अन्तर्विरोध देखते हैं तो क्लीन्थ ब्रुक्स सन्दर्भ और उक्ति की विसंगतिपूर्ण स्थिति में। रिचर्ड्स की काव्य-मूल्य विषयक धारणा का आधार अन्तर्विरोध है जो प्रमाता के चित्त में उत्पन्न अधिक से अधिक विरोधी रागात्मक प्रतिक्रियाओं का समीकरण करने में सफल होती है, उसका उतना ही मूल्य है अर्थात् प्रमाता की चेतना में विविध प्रकार की, प्राय: विरोधी चित्तवृत्तियों के उद्बोध और समाधान की क्षमता। यह कार्य काव्य अथवा संवेद्य भाव सामग्री के संयोजन के दूसरी ओर शब्दार्थ के विधान द्वारा सम्पन्न होता है।

ऐलेन टेट 'अन्तर्विरोध' को स्पष्ट करने के लिए 'तनाव' को सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। तनाव वहाँ होता है, जहाँ कविता में शाब्दिक और रूपकात्मक अर्थ एक साथ उपस्थित होते हैं।

शाब्दिक अर्थ को एलेन टेट ने बहिर्मुख तनाव और रूपकात्मक अर्थ को आन्तरिक तनाव कहा है। इन दोनों में जितना अधिक तनाव और अन्तर्विरोध होगा, कविता उतनी ही उत्तम होगी। यह अन्तर्विरोध ही कविता का काव्यत्व है और भाषिक होने के कारण काव्य संरचना का विषय भी है।

एम्पसन ने अन्तर्विरोध को श्लेष का एक भेद माना है, वे शब्द-विशेष के अर्थ--संदर्भ के अन्तर्गत दो परस्पर विरोधी भावों की इस प्रकार व्यंजना करते हैं कि कुल मिलाकर उनके द्वारा कवि या वक्ता के मन्तव्य में निहित मूलवर्ती अन्तर्विरोध का संकेत मिलता है।

संरचनावाद

संरचनावाद आज के युग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और व्यापक बौद्धिक व्यवस्था-पद्धति या प्रणाली है, जिसकी व्याप्ति में साहित्य, जीव-विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा नृतत्त्वशास्त्र आदि को समेटा जा सकता है। यह अमूर्त एवं जटिल प्रत्यय है। इसका मूल आधार है--भाषा-विज्ञान। विभिन्न विषयों की व्याप्ति के कारण ही साहित्य की वैज्ञानिक आलोचना के लिए संरचनावाद का प्रयोग होने लगा है। पाश्चात्य आलोचक रोनाल्ड बार्थ ने इसी आधार पर कुछ व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखी हैं।

अर्थ और स्वरूप--'**संरचनावाद**' विभिन्न अवयवों एवं घटकों से सम्पन्न वस्तुस्थिति के लिए प्रयुक्त होता है। प्रत्येक वस्तु का एक अवयव होता है, उसके

अपने घटक होते हैं। इस विवेचन की पद्धति को ही 'संरचनावाद' का नाम दिया गया है।

संरचनावाद के बीज-तत्त्व सभी रूपवाद में मिलते हैं, जहाँ सारा बल भाषा पर है। भाषा से बाहर उसे कुछ भी ग्राह्य नहीं है। ज्याँ पेजे ने इसके तीन घटकों का उल्लेख किया है--

1. **साकल्य**--इसका अभिप्राय है विभिन्न इकाइयों की आन्तरिक संगति। यह स्वयं में पूर्ण होती है। यह अवयव-सहित और अवयव-रहित हो सकती है।

2. **रूपान्तरण**--भाषा के विभिन्न घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों का परिवर्तन संरचना में रूपान्तरण कहलाता है। रूपान्तरण की यह प्रक्रिया निरन्तर गतिशील होती है।

3. **आत्मानुशासन**--संरचना अपने अनुशासन तथा नियमों के अनुसार कार्य करती है। इसके अपने आन्तरिक नियम होते हैं और उन्हीं के अनुसार यह अनुशासित होती है। संरचना के घटक आन्तरिक होते हैं। भाषिक सरंचना के शब्द 'तुम', 'आप', 'मैं' आदि सर्वनाम, कर्त्ता आदि हो सकते हैं।

संरचना पूर्ण होती है। वह चाहे साहित्य की संरचना हो या मिथक की। किसी साहित्यिक कृति के घटकों का योग संरचना नहीं है। प्रत्येक घटक पूर्ण के अंग-रूप में, एक आन्तरिक नियम से परिचालित होकर संरचना का संश्लिष्ट अंश बनता है। घटक अंग हैं तो संरचना अंगी। दोनों में अंगांगी सम्बन्ध है। अत: संरचना अपने-आप में पूर्ण भी है और प्रक्रिया भी है।

डॉ. नरेश मिश्र के अनुसार--''भाषा-संरचना का मूलाधार संरचनात्मक पद्धति है। जिस प्रकार भवन-रचना में ईंट, सीमेन्ट, लोहा, शक्ति अर्थात् मजदूर और कारीगर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा-संरचना में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ की अपनी-अपनी भूमिका होती है।'' इस दृष्टि से भाषा के अन्तर्गत ध्वनि-संरचना, शब्द-संरचना, पद-संरचना, वाक्य-संरचना, प्रोक्ति-संरचना, तथा अर्थ-संरचना का अध्ययन किया जाता है।

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार--''किसी संघटना के अंगीभूत घटकों का क्रम-विन्यास और पारस्परिक सम्बन्ध ही संरचना है।''

संरचनावाद मूलत: एक पद्धति है। साहित्य की प्रत्येक विधा इस पद्धति पर आधारित है। यह वैज्ञानिक पद्धति है। संरचनावादी इसे साहित्यालोचन का विज्ञान भी कहते हैं। संरचनावादियों का सम्बन्ध अर्थ से न होकर पद्धति से होता है।

संरचनावाद का मूलाधार--संरचनावाद का मूलाधार सस्यूर का भाषा-सम्बन्धी अध्ययन है। वह भाषा के दो तत्त्वों का अध्ययन करते हैं--लॉग (भाषा) और पेरोल (वाक्)।

भाषा के अपने नियम होते हैं। भाषा की अपनी एक परम्परा होती है। भाषा के अपने अमूर्त नियम होते हैं, जिनसे वाक् नियन्त्रित होता रहता है। भाषा वाक् में ही खण्डशः मूर्त्त होती है। वाक् वैयक्तिक उच्चारण है। वह भाषा के नियमों के आधीन है। दूसरो शब्दों में, वाक् को अभिव्यक्ति कह सकते हैं। सस्यूर ने भाषा और वाक् के अन्तर को शतरंज के खेल द्वारा स्पष्ट किया है--

शतरंज के खेल के कुछ नियम हैं, जो अमूर्त्त हैं। ये अमूर्त्त नियम खेल के समय क्रियान्वित होते हैं। शतरंज के अमूर्त्त नियमों के समान भाषा के भी कुछ नियम हैं, किन्तु वास्तविक खेल को पेरोल (वाक्) कह सकते हैं। स्पष्टतः भाषा के अमूर्त्त नियम ही 'वाक्' पर लागू होते हैं।

प्रसिद्ध नृतत्त्ववेत्ता लेवी स्त्रौस अपनी संरचना के लिए सस्यूर से ही प्रेरणा ग्रहण करते हैं। आदिम मनुष्यों, कबीलों और मिथकों की संरचना की खोज वे रूपवादी याकोब्सन के मॉडल पर करते हैं। समस्त संसार के मिथकों का अध्ययन करते हुए वह उनके सर्वमान्य नियमों को स्पष्ट कर लेते हैं। एक ही मिथक के भिन्न-भिन्न रूप वाक् हैं तो मूल मिथक भाषा है। वाक् के आधार पर भाषा के अपने नियमों को खोजना ही संरचना है।

सस्यूर की यह पद्धति साहित्यिक रचना पर घटाई जा सकती है। रचना विशेष को पढ़ना ही वाक् है। आलोचक उसकी संरचना को खोजता है। वह रचना के द्वारा सम्पूर्ण साहित्य की पद्धति को खोजने का भी प्रयास करता है। साहित्य की एक मूल पद्धति होती है। विधाएँ उस पद्धति के विभिन्न रूपान्तरण मात्र हैं। इस प्रकार संरचनावाद में उस पद्धति को महत्त्व दिया जाता है, जिसके अनुसार रचना का सृजन हुआ है। इसीलिए पद्धति के कारण ही रचना साहित्यिक कहलाती है।

संरचनावाद का सीधा सम्बन्ध पाठ की समीपी छानबीन से है। उसके विभिन्न घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा अंगों के साथ प्रत्येक घटक के सम्बन्धों के विश्लेषण से है। यह रूपात्मक संघटना पर बल देता है। कृति के पाठ को संरचनावाद महत्त्व नहीं देता।

शैली-विज्ञान

शैली-विज्ञान भाषा-विज्ञान की वह शाखा है, जिसके माध्यम से साहित्य की

रचनात्मक कृतियों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार शैली-विज्ञान काव्य का शैली के कोण से अध्ययन है।

शैली का अर्थ है-- प्रकार या काम करने का ढंग। शैली यों तो प्रत्येक प्रकार के कार्य-व्यापार से सम्बद्ध होती है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में शैली का अर्थ होता है--अभिव्यक्ति-शैली अथवा शब्द-प्रयोग-शैली। इसे भाषा-प्रयोग की शैली या भाषा-प्रयोग की भंगिमा भी कहा जा सकता है।

शैली की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं--

1. शैली भाषिक अभिव्यक्ति का ढंग है।
2. यह ढंग सामान्य न होकर विशिष्ट होता है अर्थात् सर्वसामान्य भाषिक अभिव्यक्ति के ढंग से अलग।
3. इसका सम्बन्ध शैलीकार के व्यक्तित्व से होता है अर्थात् व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य शैली में झलकता है।
4. शैली विषयवस्तु से सम्बन्धित होती है।
5. सामान्य भाषिक अभिव्यक्ति से अलग करने के लिए शैली का प्रयोक्ता चयन, विचलन, संयोजन और समानान्तरता एवं अप्रस्तुत-विधान आदि उपकरणों की सहायता लेता हैं, जो सामान्य भाषा में सुलभ नहीं होते।
6. शैली भाषिक अभिव्यक्ति का ढंग है। अत: चयन, विचलन आदि सभी भाषिक इकाइयों (ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ) की दृष्टि से हो सकते हैं।
7. किसी कृति अथवा साहित्यकार की भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट अंग का निर्धारण उसमें बहुलता से प्राप्त उपकरणों से होता है, अपवादों से नहीं, क्योंकि अभिव्युक्ति की विशेषताओं के रूप में ही शैली में व्यक्ति के व्यक्तित्व की छाप होती है।

इससे स्पष्ट है कि एक साहित्यकार अपनी काव्य-सृष्टि के समय जो भाषा-प्रयोग करता है, वह सामान्य न होकर विशिष्ट होती है। यह वैशिष्ट्य भाषा के प्रत्येक अंग, यथा--शब्द, अर्थ, वाक्य, प्रोक्ति, ध्वनि, रूप आदि के स्तर पर होता हैं। कवि की शैली में जो विशेषताएँ होती हैं, वे उसकी सभी कृतियों में कम या अधिक पाई जाती हैं।

'शैली' का अन्य अर्थ यह भी है--साहित्यिक अभिव्यंजना की प्रविधि। शैली-विज्ञान अंग्रेजी के स्टाइलिस्टिक्स (Stylistics) का अनुवाद है। कुछ लोग

इसे 'रीति-विज्ञान' की भी संज्ञा देते हैं,किन्तु संस्कृत का 'रीति' शब्द एक विशिष्ट काव्यशास्त्रीय अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'शैली' शब्द की व्यापकता उसमें नहीं है। व्यवहार में भी 'शैली-विज्ञान' शब्द प्रचलित हो गया है। इस प्रकार यह शब्द आलोचना का एक वाचक शब्द बन गया है।

भारतीय काव्यशास्त्र मुख्य रूप से भाषा और सौन्दर्य के समूह का ही पालन करता है। आचार्य भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, कुन्तक, क्षेमेन्द्र आदि की काव्य-परिभाषाएँ शब्दार्थ के वैशिष्ट्य से सम्बद्ध हैं। शैली-विज्ञान की अधिकांश प्रविधियों का समावेश भारतीय काव्यशास्त्र में दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इसके सूत्र खोजे जा सकते हैं। रिचर्ड्स, रैन्सम, पाउण्ड, ब्रुक्स आदि की आलोचनात्मक शब्दावली में भी बहुत कुछ ऐसा है, जो शैली-विज्ञान में अन्तर्भुक्त हो जाता है, किन्तु अपनी भाषा-वैज्ञानिकता के कारण शैली-विज्ञान एक वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है।

व्याकरणिक भूमिका पर खड़ा शैली-विज्ञान काव्य के रूप और सौन्दर्य-पक्ष को अछूत मानता है। उसकी अपनी ही तकनीक इतनी पेचीदा है कि उसके माध्यम से सौन्दर्यशास्त्रीय आयाम खोज निकालना श्रमसाध्य कार्य है।

शैली की धारणा--पाश्चात्य जगत् में शैली-सम्बन्धी पाँच प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं--

1. प्रथम धारणा के अनुसार शैली का सम्बन्ध पूर्ण अभिव्यक्ति से है।

एवर क्रॉम्बी शैली को ''किसी रचना की आत्मा एवं रचयिता के व्यक्तित्व का प्रकटन'' मानते हैं।

जे. मिडिलटन मरे शैली को ''अनुभव के वैयक्तिक प्रकार की सीधी अभिव्यक्ति'' मानते हैं।

आई. ए. रिचर्ड्स का मत है--''शैली का सम्बन्ध मात्र बाह्य अभिव्यक्ति से नहीं है, उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया से है।''

2. द्वितीय धारणा शैली को सम्पूर्ण अभिव्यक्ति से नहीं, अपितु केवल भाषा से जोड़ती है। इस धारणा के अनुसार भाषा के उपकरणों के प्रयोग की विधि ही शैली का निर्माण करती है। जॉन स्पेन्सर, एरिक इसी वर्ग के हैं। ब्रुक्स के अनुसार भाषा का चयन और उसको व्यवस्थित करना ही शैली है। इस धारणा में शैली का क्षेत्र मात्र भाषिक अभिव्यक्ति तक ही सीमित कर दिया गया है।

3. *तृतीय धारणा शैली का क्षेत्र भाषा के विस्तृत क्षेत्र से हटाकर शब्द के*

संकुचित क्षेत्र तक ले जाती है। शैली की यह धारणा शब्द-चयन तथा शब्द-व्यवस्था पर आधारित है।

4. चतुर्थ धारणा शब्द और भाषा के क्षेत्र को पीछे छोड़ शैली को सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में देखती है। इस मत के समर्थक विद्वान बहुसंख्यक हैं। एफ. एल. ल्यूक्स के अनुसार--''शैली वह साधन है, जिससे मनुष्य दूसरे से सम्पर्क करता है।''

कोक्त्यु के अनुसार ''जटिल विषयों को सरल तरीके से कहना ही शैली है।''

5. पाँचवीं धारणा शैली को व्यक्ति के समकक्ष मानने वालों की है। इस धारणा के प्रवर्तक बुफों के अनुसार--''व्यक्ति ही शैली है।'' पाश्चात्य आधुनिक समीक्षा में सभी समीक्षक शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन अवश्य करते हैं, यथा--एलन टेट 'तनाव' को और 'तनाव' के अध्ययन को महत्त्व देते हैं। क्लीमेन्थ ब्रुक्स अच्छी कविताओं में व्यंग्य और विरोधाभास को कारणस्वरूप देखते हैं।

आईवर विन्टर्ज अभिधाश्रित व्यंग्य को उत्कृष्ट काव्य का गुण मानते हैं।

शैली-विज्ञान और भाषा-विज्ञान का समन्वय--शैली-विज्ञान का सम्बन्ध भाषा-विज्ञान और काव्यशास्त्र, दोनों से समान रूप से है। शैली-विज्ञान को समीक्षा की वह दृष्टि माना जाता है, जो भाषा-विज्ञान और काव्यशास्त्र की समन्वित पीठिका पर आधारित है। वस्तुतः शैली-विज्ञान भाषा-विज्ञान और काव्यशास्त्र के अनुबन्धन का क्षेत्र है। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में--''भाषा-विज्ञान की अन्तर्दृष्टि से सन्दर्भित और उसकी विश्लेषण प्रणाली से संयुक्त काव्यशास्त्र ही शैली-विज्ञान है।''

शैली-विज्ञान के रूप--भाषा की तरह शैली-विज्ञान के भी दो रूप होते हैं--सैद्धांतिक और प्रायोगिक। प्रथम के अन्तर्गत इसके सिद्धांतों की चर्चा होती है तथा द्वितीय में उन सिद्धांतों के आधार पर किसी साहित्य-काल, साहित्यकार, कृति, विधा अथवा कृति के किसी अंश आदि का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है।

शैली-विज्ञान की शाखाएँ--शैली-विज्ञान की अनेक शाखाएँ हैं। इसका सम्बन्ध भाषा के प्रयोग से है। अतः भाषा के जितने भी अंग अथवा शाखाएँ होती हैं, उतनी ही शैली-विज्ञान की शाखाएँ हो जाती हैं। कुछ शाखाएँ इस प्रकार हैं--

1. ध्वनीय शैली-विज्ञान
2. शब्दीय शैली-विज्ञान
3. अर्थीय शैली-विज्ञान
4. वाक्यीय शैली-विज्ञान
5. रूपीय शैली-विज्ञान

सामान्य भाषा-प्रयोग में वाक्य ही भाषा की सबसे बड़ी इकाई होती है। इसी से व्याकरण एवं भाषा-विज्ञान में वाक्य एवं उसके घटक-तत्त्वों; यथा--शब्द, अर्थ, कारक, प्रत्यय, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण आदि का अध्ययन किया जाता है, परन्तु साहित्यिक कृद्वियों में भाषा की इकाई वाक्य न होकर सुसम्बद्ध वाक्यों का समूह होती है जिसे प्रोक्ति कहा जाता है। पूर्ण कृति को भी प्रोक्ति कहा जाता है और उसके एक सुसम्बद्ध बहुवाक्यीय अंश को भी। साहित्यिक कृति में प्रभाव-ग्रहण वाक्य द्वारा न होकर प्रोक्ति द्वारा ही होता है।

शैली के उपकरण--शैली-विज्ञान काव्यात्मा का विश्लेषण भाषा के किस रूप में करता है, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। सामान्य भाषिक अभिव्यक्ति से अलग कर काव्य-सर्जक अपनी भाषा में जिन आभिव्यक्तिक उपकरणों की सहायता लेता है, उन्हीं के आत्म-तत्त्व की खोज करता है। वे उपकरण हैं--चयन, विचलन, संयोजन, समानान्तरता,आवृत्ति, प्रश्नात्मकता, विराम चिह्नों का प्रयोग, वैशिष्ट्य एवं लय आदि। प्रत्येक वह उपकरण, वह साधन, जो भाषिक अभिव्यक्ति में वैशिष्ट्य ले आता है, शैली का उपकरण हो जाता है।

मूल्यांकन--शैली-विज्ञान, वस्तुतः साहित्यालोचन की वस्तुनिष्ठ भूमिका है। यह उन विशेषताओं का अध्ययन करता है, जिसके द्वारा मानक भाषा काव्य-भाषा बन जाती है और साहित्यकार का शब्द-प्रयोग अपने में विचित्र प्रभावोत्पादिनी क्षमता भर लेता है।

इस प्रकार शैली-विज्ञान साहित्यिक रचना के उन साहित्यिक गुणों का सन्धान करता है, जो परम्परागत साहित्य-समीक्षा नहीं कर पाती। शैली-विज्ञान की उपादेयता साधन-रूप में है, क्योंकि वह साहित्य के मूर्त्त-रूप वर्ण, शब्द, वाक्य आदि का विश्लेषण कर रचना के भाषिक अध्ययन द्वारा उसके मूल अर्थ-काव्यार्थ-को व्यक्त करने में तथा कलात्मक मूल्य के आकलन में सहायक बनता है।

विखण्डन-सिद्धांत

विखण्डन-सिद्धांत पश्चिम की समीक्षा-प्रणाली का नवीनतम आविष्कार है। फ्रांस के दार्शनिक, भाषाविद् और आलोचक दरिदा इस पद्धति के उद्‌भावक हैं। यह उत्तर-संरचनावाद का सशक्त अकादमीय आन्दोलन है। डिलिस मिलर, पाल डी. हाइमैन आदि ने इसे समझने और समझाने का प्रयास किया है। कुछ विद्वान इस सिद्धांत को क्रान्तिकारी कहते हैं और कुछ विद्वान् इसे अर्थहीन और आतंकवादी कहते हैं।

विखण्डन-सिद्धांत को विनिर्मितिवाद (डी-कन्स्ट्रक्शन) भी कहा गया है।

दरिदा की पुस्तक 'ग्रामैटोलॉजी' विखण्डन-सिद्धांत (डी-कन्स्ट्रक्शन) का मूल आधार है। दरिदा भाषा में उच्चार के स्थान पर लेखन को महत्त्व देते हैं। लेखन उच्चार का चित्रालेख है। विखण्डन-सिद्धांत ने साहित्य की 'प्रकृति' और 'कृति' की अवधारणाओं को परिवर्तित कर दिया। दरिदा की इस नयी सोच ने भाषा और दर्शन के प्रश्नों को भी बदलकर रख दिया। उधर फ्रान्सुआ ल्योतार ने इतिहास की आधुनिकता को विखण्डित कर दिया। इस प्रकार उत्तर-संरचनावाद एक दार्शनिक रूप की तरह आया है। फ्रांस में यह विचार सातवें-आठवें दशक में विकसित हुआ था, परन्तु आज समूचे विश्व में व्याप्त हो चुका है। पश्चिम के वर्तमान चिन्तन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। यह समूचे विश्व के यथार्थ में विश्वव्यापी अवधारणा के रूप में पढ़ा जा रहा है। उत्तर-संरचनावाद उत्तर-औद्योगिक युग की रणनीति है। इसी को विखण्डन भी कहा जाता है।

विखण्डन-सिद्धांत का अर्थ और स्वरूप--दरिदा के अनुसार विखण्डन का कोई परम्परागत रूप सम्भव नहीं है। वह दर्शन होकर भी दर्शन नहीं है और आलोचना होकर भी आलोचना नहीं है। फिर भी, दरिदा का कथन है--''विखण्डन की क्रिया यह स्पष्ट करती है कि भाषा किस प्रकार दर्शन की योजना को जटिल बना देती है। विखण्डन विचार को निरस्त कर देता है। यह विचारधारा पश्चिमी समाज का संचालन करने में काफी महत्त्वपूर्ण रही है।'' परन्तु दरिदा का विखण्डन-सिद्धांत विचारधारा को ही नकारता है।

इस दृष्टि से दरिदा दार्शनिक कम और आलोचक अधिक हैं, क्योंकि दरिदा संरचना समीक्षा में कोई अन्तर नहीं मानते। विखण्डनवादी दृष्टिकोण में सब बराबर है। आलोचना, दर्शन, भाषा-विज्ञान, नृविज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के मानव-विज्ञान दरिदा की दृष्टि में विखण्डन की वस्तुएँ हैं।

दरिदा के अनुसार विखण्डन (डी-कन्स्ट्रक्शन) के तीन बीज-शब्द हैं--

1. भिन्नता (डिफरेन्स)
2. निशान (ट्रेस)
3. आद्य-लेखन (आर्क-राइटिंग)

इनमें प्रथम दो शब्दों का सम्बन्ध साहित्य की भाषिक संरचना से है और तीसरे का अनकहे की खोज से है। भिन्नता का अर्थ चिह्न की दो क्रियाओं से है--भिन्नता और विलम्बन या स्थगन। भिन्नता का अभिप्राय है कि जो वह है, वह दूसरा नहीं है। विलम्बन का अभिप्राय है ऐसा कुछ, जो पूरे तौर पर पाठ में नहीं है या स्थगित

है। पहला दिक् में है और दूसरा काल में।

उदाहरणार्थ, 'पंक' और 'पंकज' को लिया जा सकता है। दोनों के उच्चार और लेखन में भिन्नता है। जो एक है, वह दूसरा नहीं है। जो दूसरा है, वह पहला नहीं है। चिह्न की दूसरी शक्ति अर्थ के विलम्बन या स्थगन में है। पंकज का अर्थान्वेषण तब शुरु होता है, जब हम समझ लेते हैं कि वह पुष्प नहीं है। कविता में यह दूसरा अर्थ होता है। अत: चिह्न का आधा भाग वह है, जो वह नहीं है और आधा वह है, जो वहाँ उपस्थित नहीं है। सस्यूर के चिह्न का समीकरण संकेतक + संकेतिक है, जबकि दरिदा का भिन्नता + विलम्बन या स्थगन।

शब्द अपने-आपमें अपर्याप्त या अपूर्ण होता है। वह जितना कहता है, उससे अधिक नहीं कहता यानी उसमें विलोमीकरण की शक्ति होती है। सभी चिह्न हमें उस दिशा की ओर प्रेरित करते है, जो वे नहीं हैं।

प्रश्न उठता है कि जो चिह्न में नहीं है, उसकी खोज कैसे हो? चिह्नों में कुछ निशान होते हैं, जो हमें अनुपस्थित अर्थ की ओर ले जाते हैं। अनुपस्थित आद्य-लेखन ही अर्थ है। दरिदा के अनुसार निशान, पद-चिह्न या ट्रेस कुछ है, जिससे अनुपस्थित तक पहुँचा जा सकता है। उनकी दृष्टि से काव्य में भाषा का नहीं, निशान या ट्रेस तथा अनुपस्थिति का महत्त्व है। वस्तुत: भाषा का मौन; अन्तराल, निशान ट्रेस ही है, किन्तु निशान को अदृश्य कहना कुछ भी संकेतित नहीं करता।

भारतीय काव्यशास्त्र में निहित 'गंगायां घोष:' का उदाहरण तथा दरिदा के विखण्डन (डी-कन्स्ट्रक्शन) में कुछ समानता नहीं है, क्योंकि भारतीय काव्यशास्त्र की शब्द-शक्तियों का सिद्धांत इससे कहीं अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

रचना और समीक्षा की अभिन्नता--विखण्डन-सिद्धांत के अनुसार साहित्यिक रचना और आलोचना में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों में अर्थ की बहुलता और जटिलता है। दोनों आशयों को खोजने के लिए आगे बढ़ते रहते हैं। अत: रचना बड़ी है या आलोचना बड़ी है, यह सोचना व्यर्थ है। दोनों ही बराबर हैं।

दरिदा के अनुसार रचना की भाषा आलोचना की भाषा से बड़ी है, क्योंकि वह प्रथम प्रयास है।

दरिदा विखण्डन-सिद्धांत के द्वारा यह स्पष्ट करते हैं कि पाठ-प्रक्रिया अलग होती है। साहित्यिक पाठ में उसकी अन्तर्दृष्टि खोजनी होती है। वस्तुत: पाठ एक कार्यवाही है। उससे न कोई परिणाम निकलता है और न कोई निष्कर्ष। इससे केवल भेद की स्थापना होती है।

सस्यूर का मत था कि भेदों की संरचना पर ही भाषा निर्भर है। संरचनात्मक होने के कारण भाषा अपने अन्दर असीम अर्थों को व्याप्त कर लेती है। यही धारणा आधुनिक भाषा-विज्ञान का आधार बनी है। सस्यूर ने प्रथम बार भाषा की आम व्यवस्था (लॉग) और भाषा के स्वतन्त्र वाक् (पेरोल) में भेद किया। सस्यूर का यह भाषागत विवेचन सांस्कृतिक चिन्तन पर भी पड़ा। उसी के परिणामस्वरूप आलोचना-जगत् में संरचनावाद की स्थापना हुई।

लेखन पर बल--दरिदा ने वाक् की अपेक्षा लेखन को अधिक महत्त्व दिया है। वह लेखन को भाषा की पूर्व शर्त मानते हैं। उनके अनुसार 'लेखन', 'वाक्' से पहले होता है। यह स्वतन्त्र लेख है। यही भाषा पर अनुशासन रखता है। और उसे प्रामाणिक बनाता है। पश्चिमी दर्शन में लिखित को द्वितीय स्थान दिया गया है।

दरिदा भाषा और विचार के सम्बन्ध को उलट देते हैं। इसी को वे विखण्डन कहते हैं। इसी से संरचनावाद को विखण्डन की पूर्व शर्त मानते हैं, जबकि सस्यूर ने भाषा को दबा दिया और संरचना में कैद होकर रह गए। उन्होंने वाक् को प्रथम और प्रमुख बना दिया।

विखण्डन और पाठ--विखण्डन पढ़ने की प्रक्रिया है। यह पढ़ना पाठ से बँधा हुआ है। दरिदा भेद या पार्थक्य पर बल देते हैं। वे इसे पार्थक्य तथा परता (दूरी) कहते हैं। फिर भी, विखण्डन अवधारणा में परिवर्तित नहीं हो सका है। दरिदा के अनुसार नवीन अर्थ पूरक रूप में ही है। लेखन एक साथ सांस्कृतिक कर्म का स्रोत है और वह अपने भीतर निहित ज्ञान को दबाने वाला है। विखण्डन लेखन में दबे हुए अर्थ को मुक्ति देता है। दरिदा इस सन्दर्भ में कहते हैं कि पाठ के बाहर कुछ नहीं है।

विखण्डन का कार्य पाठ के दबे हुए तत्त्व को पाठ के प्रकट-तत्त्व के सामने लाना है, क्योंकि यह पाठ 'दबा हुआ तत्त्व' और दबाने वाला प्रकट-तत्त्व के बीच एक संशय और अन्तर्विरोध पैदा करता है।

दरिदा की राजनीतिक प्रतिबद्धता--दरिदा के विचार मौलिक और महत्त्वपूर्ण हैं। उनका विखण्डन सत्यता का दावा करने वाले 'तर्क' को उसी के विरोध में लाकर खड़ा कर देता है तथा उसके कारण छिपे हुए अर्थ को खोजता है। यह दरिदा का अपना पढ़ने का तरीका है। पाश्चात्य दर्शन में सत्य की उपस्थिति तथा पहली उपस्थिति को महत्त्व प्रदान किया गया है। उदाहरणार्थ, भाषा में अलंकारों का प्रयोग सत्य को छिपाने का प्रयास है। विखण्डन इसी अन्तर्विरोध का उद्घाटन करता है। अलंकार सत्य से सर्वथा अलग है और वह 'सत्य' को सदैव दबाने का प्रयास करता

है। अतः सत्य और आलंकारिक भाषा में पृथकता है।

दरिदा ने मार्क्स और नीत्शे के अन्तर्गत छिपे हुए उत्तर-संरचनावाद (विखण्डन) से भी प्रभाव ग्रहण किया, जो उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है। दरिदा की दृष्टि में मार्क्सवाद का विखण्डन अनेक अर्थों की व्याख्या करता है, क्योंकि जब मार्क्स ने आदर्शवाद का विखण्डन किया तो वह स्वयं विखण्डित हो गया।

दरिदा ने द्वन्द्ववाद और पार्थक्यवाद में भी भेद स्वीकार किया है। उनका विचार है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की भाषा अलंकृत होती है। मार्क्सवाद में अलंकार अवधारणा को स्पष्ट करते हैं। दरिदा इसमें छिपे मीमांसावाद का पता लगाते हैं।

दरिदा अपने चिन्तन में मार्क्स के प्रति मौन धारण किए हुए हैं। पश्चिम में ऐसे मौन को असह्य माना गया है। दरिदा ने मार्क्स की अपेक्षा हीगेल पर लम्बी टिप्पणी की है।

विखण्डन के कारण ही साहित्य विज्ञान से बाहर है व अपने पैरों पर खड़ा है। विज्ञान बाहर से प्रमाण खोजता है, परन्तु साहित्य अपने भीतर भी प्रमाण खोजता है।

यहाँ आकर विखण्डन से जुड़कर समीक्षा एक सांस्कृतिक रूप बन गई। इसलिए विखण्डन साहित्य की उत्तर-आधुनिक स्थिति है। इस प्रकार विखण्डन एक ऐसी रणनीति है, जो उत्तर-संरचनावाद को खण्डित कर देती है।